© 2017 IJSRSET | Volume 3 | Issue 8 | Print ISSN: 2395-1990 | Online ISSN : 2394-4099

पद्मपुराण में वर्णित धर्म का स्वरूप

डॉ. कृष्णा कुमार
व्याख्याता, संस्कृत विभाग,
एस.जे.एस कॉलेज, कुर्था, अरवल, बिहार, भारत।

धर्म सम्पूर्ण विश्व की प्रतिष्ठा है, संसार की शाश्वत नैतिक व्यवस्था का एकमात्र आश्रय है। लोक में धर्मनिष्ठ के निकट समस्त जन–समूह जाता हे, धर्म के द्वारा लोग अपने पाप के हटाते हैं, धर्म पर सब कुछ प्रतिष्ठित है, अतएव धर्म को सर्वश्रेष्ठ कहा गया है।[1] धर्म की इस महनीय विशेषता को ध्यान में रखते हुए इतिहास पुरणादि में धर्म के व्यापक स्वरूप की विवेचना की गयी है। सृष्टि के आरम्भ से अवसान पर्यन्त समग्र व्यापार धर्म के नियमों से आबद्ध है। संसार की गति प्रवृत्ति और नियति सर्वथा धर्माधीन है। ज्ञात–अज्ञात रूप से जड़–चेतन का प्रत्येक क्रिया–कलाप अपने नियत धर्म के अनुसार ही सम्पन्न होता है। धर्म की इस सार्वभौम सत्ता का अनुभव भारतीय मनीषियों को हुआ था। महाभारत के रचयिता ने भी धर्म की परिभाषा में इसके महत्त्व और सामर्थय का उद्घाटन किया है। यथा–धारण करने से इसे धर्म कहा गया है। धर्म प्रजा का धारण करता है जो धारण से युक्त हो वह धर्म है, यह निश्चय है।[2]

पूर्वोक्त दोनों परिभाषाओं में धर्म के सार्वभौम स्वरूप की उपस्थापना की गयी है। धर्म का दूसरा रूप व्यावहारिक स्तर पर प्रतिष्ठित है। वही मानव–समुदाय केकल्याणार्थ कर्त्तव्य और आचरण का नियंत्रण करता है। यह कोई अलौकिक ईश्वरीय नियम या विधान नहीं है बल्कि जीवन की एकआचार संहिता है। इसके लिए तीन स्रोत स्वीकार किये गये हैं – श्रुति, स्मृति और शिष्टाचार।[3] इन तीनों का समन्वित रूप महाभारत और पुराणों में दृष्टिगोचर होता है। इसके अतिरिक्त भी युगधर्म के अनुरूप मानव कल्याण के कुछ सुगम उपाय इन ग्रन्थों में प्रतिपादित है जिनका समाहार धर्म के अन्तर्गत किया गया है। समीक्षकों ने इसके पौराणिक–धर्म कहा है। इसी पौराणिक धर्म के स्वरूप की मीमांसा इस प्रकरण का प्रतिपाद्य है।

पौराणिक धर्म का अभ्युदय वैदिक धर्म की व्यावहारिक कठिनता के कारण धार्मिक ह्रास के फलस्वरूप हुआ था। वैदिक यागादि कर्म अधिक वित्तसाध्य होने के कारण मात्र राजाओं के लिए साध्य थे, साथ ही जन सामान्य को वैदिक धर्म कर्म का अधिकार प्राप्त नहीं था। अतः सर्वजन सुलभ सार्ववर्णिक धर्म के अन्तर्गत जीवन के प्रत्येक पहलू पर विचार हुआ है। व्यावहारिक सौष्ठव को धर्म की परिधि में समाहितकर सामाजिक जीवन में सुव्यवस्था के द्वारा सांसारिक सुख शान्ति का मार्ग प्रशस्त किया गया है। निष्ठापूर्वक पुराणोक्त किसी भी एक उपाय का आश्रयण कर यथोक्त रीति से अनुष्ठान करने पर व्यक्ति का ऐहिक तथा पारलौकिक कल्याण हो सकता है।

धर्म के साधनभूत विविध उपायों का पुराण में प्रतिपादन कोई सर्वथा नवीन घटना नहीं है। आवश्यकतानुसार समय समय पर इतिहास पुराणदि में लोक गौरव से परिवर्तन–परिवर्तन होता रहा है।[4] इस विषय में प्रमाण स्वरूप वायुपुराण का अधोलिखित उद्धरण अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है –

पुराणेष्वेषु बहवो धर्मास्ते विनिरुपिताः।।
रागिणां च विरागाणां यतीनां ब्रह्मचारिणाम्।
गृहस्थानां वनस्थानां स्त्रीशूद्राणां विशेषतः।।
ब्राह्मणक्षत्रियविशां ये च संकरजातयः।
गंगाद्या या महानद्यो यज्ञव्रततपांसि च।।
अनेकविधदानानि यमाश्च नियमैः सह।
योगधर्मा बहुविधाः सांख्या भागवतास्तथा।।
भक्तिमार्ग ज्ञज्ञनमार्गावैराग्यानिलनीरजाः।
उपासनाविधिश्चोक्तः कर्मसंशुद्धिचेतमसाम्।।
ब्राह्मं शैवं वैष्णवं च सौरं शाक्तं तथाऽऽर्हतम्।
षड्दर्शनानि चोक्तानि स्वभावनियतानि च।।[5]

पुराणों में धर्म की स्थिति का प्रमापक वचन पुराणान्तर में भी उपलब्ध है।[6] उपर्युक्त उद्धरण में निर्दिष्ट धर्म के सभी रूप प्रायः पद्म पुराण में दृष्टिगोचर होते हैं।

व्यावहारिक जीवन में धर्म के महत्त्व का प्रतिपादन करते हुए कहा गया है कि सामान्य रूप से समस्त प्राणियों का एकमात्र बल धर्म है, जिसके सहारे इहलोक और परलोक को पार करते है।[7] धर्म की साधना से अर्थ, काम और मोक्ष तीनों की प्राप्ति होती है, अतः विद्वान पुरुष धर्म की समीक्षा करे।[8] सांसारिक एषणाओं के प्रति मनुष्यों की सहज प्रवृत्ति का अनुमान कर पुराण में उसकी प्राप्ति के लिए धर्म को प्रधान साधन बताया गया है।[9] यथा–धर्म से धन–धान्य, स्त्री, पुत्रादि की प्राप्ति होती है। धर्म के कारण पुण्यस्थल में मृत्यु और मरणोत्तर प्राप्त होने वाले लोकोत्तर यात्रा के उपकरणों तथा स्वर्गादि के सुखभोग का विस्तृत वर्णन किया गया है।[10] धर्म भगवान् विष्णु का अंग है और सभी देवताओं से पालित है, इस कारण मनुष्यों को भी उसका चिन्तन–मनन और अनुपालन करने का निर्देश दिया गया है। इस प्रकार से धर्मात्मा से विष्णु सर्वदा प्रसन्न रहते हैं। धर्म–पालन की सर्वोत्कृष्ट कसौटी भगवदनुग्रह ही है।[11]
मनु ने धर्म के लक्षण में उसके दश अगों का निर्देश दिया है।[12] उसी पद्धति का अनुवर्तन पुराण में भी किया गया है, किन्तु धर्म के घटकों में कुछ परितर्वन हो गया है। धर्म के विषय में सामान्य प्रतिपादन है कि ब्रह्मचर्य, तप, पंचमहायज्ञ, दान, नियम, क्षमा, शौच, अहिंसा, सुशक्ति और अस्तेय–रूप दश अंगो द्वारा धर्म को परिपूर्ण करना चाहिए।

ब्रह्मचर्येण तपसा मखपंचकवर्तनैः।
दानेन नियमैश्चापित क्षमाशौचेन वल्लभ।।
अहिंसया सुशक्त्या च ह्यस्तेयेनापि वर्तनैः।
एतैर्दशभिरंगैस्तु धर्ममेव प्रपूरयेत्।। (पद्म0 भूमि, 12/44–45)

धर्म के स्वरूप का साक्षात्कार करने वाले दत्तात्रेय और महर्षि दुर्वासा बताये गये हैं। इन दोनों ने दीर्घकाल तक निराहार रहकर कठोर तपस्या के द्वारा धर्म की मूर्तिका साक्षात् दर्शन प्राप्त किया था।[13] इस प्रसंग में धर्म के स्वरूप का सागोपांग रूपकात्मक चित्रण हुआ है, जिसमें धर्म का पूरा परिवार समाहित है। यथा–ब्रह्मचर्य, तप, सत्य, धर्म, दम, नियम शौच–इत्यादि पुरूषवर्ग तथा क्षम, दया, अहिंसा, शान्ति, शुश्रूषा, श्रद्धा, भक्ति, बुद्धि, मेधा, प्रज्ञा, इत्यादि स्त्रीवर्ग।[14] इस प्रकार मन–वाणी तथा शरीर से क्रियमाण यावत् पवित्र कर्म धर्म के अंग अथवा परिवार के रूप में संगृहीत है। इसीलिए कहा गया है कि त्रिविध–कर्म के द्वारा धर्मात्मा पुरुष धर्म की सृष्टि करता है।[15] इसके अतिरिक्त तीर्थ, व्रत तथा विविध सामाजिक और कौटुम्बिक कल्याण कार्यो द्वारा धर्मार्जन करने का निर्देश किया गया है। मन्दिर, आराम, वापी, कूप, तडागादि का निर्माण, गोप्रचार भूमि का प्रबन्ध, वृक्षारोपण, अन्न–जन, वस्त्रादि का दान, दीन दुःखियों की सेवा इत्यादि सामाजिक धर्म की प्रतिष्ठा पौराणिक धर्म की विशेषता है। राष्ट्र और प्रजा की रक्षा में प्राणों का उत्सर्ग करना वीर (क्षात्र) धर्म माना गया है। पुत्र द्वारा पिता–माता की सेवा, पत्नी द्वारा पति की सेवा, सेवक द्वारा सर्वतौभावेन स्वामी का हित–सम्पादन इत्यादि परम धर्म कहे गये हैं। सबसे बढ़कर निष्ठापूर्वक अपने विहित कर्म का आचरण सर्वोपरि धर्म के रूप में प्रतिपादित है।[16] इस प्रकार पौराणिक धर्म की परिधि में मानवता के सर्वश्रेष्ठ गुणों का समाहार कर धर्म के व्यापक और व्यवहारिक स्वरूप की उपस्थापना की गयी है जिससे मान समाज का लौकिक अभ्युदय और पारलौकिक कल्याण सम्पन्न हो सकता है। इसीलिए महर्षि कणाद ने जिससे लौकिक अभ्युदय और पारमार्थिक कल्याण हो उसके उस कर्म को धर्म कहा है–

'यतोऽभ्युदयनिः श्रेयससिद्धिः स धर्मः।'[17]

सन्दर्भ सूची –

1. धर्मो विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठा, लोके धर्मिष्ठं प्रजा उपसर्पन्ति, धर्मेध पापमपनुदन्ति, धर्मे सर्व प्रतिष्ठिम्, तस्माद्धर्म पदम। वदन्ति। तै0 आ0 10/63/7
2. धारणाद्धर्ममित्याहुर्धर्मो धारयते प्रजाः। यत्स्याद्धारणसंयुक्त स धर्म इति निश्चयः।। कर्णपर्व 69/58
3. श्रुतिस्मृत्युदितं सम्यक् साधुभिर्यश्च सेवितः। पदम्0 आदि, 54/18।
4. इतिहासपुराणानि भिद्यन्ते लोकगौरवानत्। स्कन्दपुराण, कुमारिका खण्ड, 40/198
5. वायुपुराण, अ0 104/11–16।
6. अष्टादश पुराणानि व्यासाद्यैः कथितानि तु।
   नियोगाद् ब्रह्मणो राजन् तेषु धर्मः प्रतिष्ठितः (कूर्मपुराण, 12/268)
7. सामान्यंसर्वजन्तूनां वलम् धर्मस्तु केवलः।
   येन सन्तरते जनतुरिह लोके परत्र च।। (पदम्0, पाताल, 92/63)
8. धर्मादर्थ च कामं च मोक्षं च त्रितयं लभेत्।
   तस्माद्धर्म समीहेत विद्वान्स बहुधा स्मृतः।। (वही, उत्तर, 75/2)
9. वही, भूमि, 14/14–15।
10. पद्म0, भूमि, 14/19–47
11. पद्म0, भूमि, 9/8–9
12. धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
    धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्।। (मनुस्मृति, 6/92)
13. पद्म0 भूमि, 12/50–56
14. वही, भूमि, 12/58–96।
15. धर्म सृजति धर्मात्मा त्रिविधेनैव कर्मणा। (पद्म0, भूमि , 12/46)
16. पद्म0 आदि, अ0 31
17. वैशेषिक सूत्र 1/ 1/2